Mind and Society ISSN 2277-6907
Vol.07, No. III & IV , Sep. & Dec. 2018, Page 79 to 81

आधुनिक संस्कृत नाटक

*डॉ. सुमन सिंह बघेल

Received	Reviewed	Accepted
07 Nov. 2018	10 Nov. 2018	15 Nov. 2018

संस्कृत नाटकों के प्राचीन काल को नाटक का स्वर्णित काल कहा जाये तो अतिश्योति न होगी, क्योंकि वे भारत में ही नहीं अपितु पाश्चात्य जगत में भी चिरस्मरणीय रहे है। मध्यकाल में नाटक लेखन का क्रम चलता रहा और आज भी प्रक्रिया अनवरत चल रही है। वर्तमान समय में समीक्षकों ने संस्कृत में लिखे जाने वाले संस्कृत काव्यों, नाटकों, कथाओं आदि को आधुनिक अथवा अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

विद्वान मनीषियों के विचारों तथा कालगत समीचीनता को ध्यान में रखते हुए मुझे ऐसा लगता है कि उन्नीसवी शती से लेकर अद्यावधि लिखे जाने वाले संस्कृत रूपकों को आधुनिक रूपकों के अन्तर्गत समाहित करना अनुचित न होगा। इसी को ध्यान में रखकर उन्नीसवीं के रूपकों का प्रतिपादन यहां आधुनिक रूपक शीर्षक के अंतर्गत किया जा रहा है।

तत्कालीन समय में धर्म की अवस्था की ओर आकर्षित करने का प्रयास अप्पाशास्त्रीराशिवडेकर ने अपने रूपक अधर्म विपाक में किया है। इसमें धर्म को विनाश से बचाने का प्रयास है। इस प्रतीक नाटक में कलि, अधर्म, श्रद्धा, भक्ति आदि प्रतीकात्मक पात्र है।

संस्कृत नाटकों के प्राचीन काल को नाटक का स्वर्णिम काल कहा जाये तो अतिश्योक्ति न होगी, क्योंकि वे भारत में ही नहीं, अपितु पाश्चात्य जगत में भी चिरस्मरणीय रहे हैं। मध्यकाल में नाटक लेखन का क्रम चलता रहा और आज भी प्रक्रिया अनवरत चल रही है। वर्तमान समय में समीक्षकों ने संस्कृत में लिखे जाने वाले संस्कृत काव्यों, नाटकों, कथाओं आदि को आधुनिक अथवा अर्वाचीन संस्कृत साहित्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है। विद्वानों द्वारा आधुनिक काल की सीमा पृथक–पृथक निर्धारित की गयी है।

डॉ. रामजी उपाध्याय ने अपने समीक्षा परक ग्रंथ ''आधुनिक संस्कृत नाटक'' का प्रारंभ 16वीं सदी के नाटकों से किया हैं डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर ने ईसा की सत्रहवीं शताब्दी को अर्वाचीन संस्कृत की पूर्व सीमा माना है।[1] इस संबंध में कलानाथ शास्त्री का कथन भी उल्लेखनीय है–''साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल शब्द केवल वर्तमान साहित्य के सन्दर्भ में ही प्रयुक्त नहीं होता बल्कि एक बड़े कालखण्ड के अर्थ में आता है। उस दृष्टि से संस्कृत साहित्य का आधुनिक काल गत 100 वर्षो में फैला हुआ मानना चाहिये। संस्कृत साहित्य के इस आधुनिक काल में जो प्रवृत्तियां विकसित हुई, वे ही वर्तमान समसामयिक लेखन में भी परिलक्षित हो रही है।[2]

कतिपय विद्वान उन्नीसवीं एवं बींसवीं शती को आधुनिक काल मानते हैं इस तरह समय की दृष्टि से आधुनिक काल की कोई सीमा निश्चित नहीं हो पाती। डॉ. हरिनारायण दीक्षित का इस सन्दर्भ में कहता है कि अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की पूर्व सीमा के निर्धारण का काम अभी सम्पूर्ण नहीं समझा जाना चाहिये।[3]

पुनरपि विद्वान मनीषियों के विचारों तथा काल गत सभीचीनता को ध्यान में रखते हुए अद्यावधि लिखे जाने वाले संस्कृत रूपकों को आधुनिक रूपकों के अन्तर्गत समाहित करना अनुचित न होगा। इसी को ध्यान में रखकर उन्नीसवीं तथा बीसवीं शती के रूपकों का प्रतिपादन यहां आधुनिक

* प्राचार्य, शासकीय कमला देवी राठी, महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, राजनांदगांव (छ.ग.)

रूपक शीर्षक के अन्तर्गत किया जा रहा है।

उन्नीसवीं शती के अधिकांशतः नाटक रामायण, महाभारत और पुराण को आधार मानकर लिखे गये है। कुछ रूपक लोक की प्रणय कथाओं पर आधारित है। इस समय के रूपकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है– उन्नीसवीं शती के प्रारंभिक काल में कस्तूरि–रंगनाथ ने रघुवीर विजय नामक नाटक का प्रणयन किया था। रामकथा पर आश्रित इस रूपक में यत्र तंत्र पारम्परिक कथा में प्रचुर परिवर्तन दृष्टिगत होता है एवं इसमें छायातत्वों का भी बाहुल्य है।

तदनन्तर आसाम निवासी श्री दीनद्विज ने 1803 ई. में शंखचूड़वध नामक नाटक की रचना की थी। इसमें शंखचूड़ का शिव के द्वारा वध किया जाता है। इस नाटक की अपनी एक मौलिक विशेषता हैं। इसमें गीत संस्कृत और असमी दोनों भाषाओं में एक साथ प्रबद्ध है। सूत्रधार द्वारा असमी और संस्कृत दोनों भाषाओं का सुन्दर प्रयोग किया जाता है। संस्कृत और असमी से युक्त एक गीत उदाहरण के रूप में उद्घृत है–

नवघनरूचिर–सुवेश श्याम राय।
पीतसस्त्रे प्रकाशय सौदामिना प्रय।।
त्रिवलिवालितगते कौस्तुभेरज्वाला।
आजाक–लम्बित–बांहे आछे वनमाला।।

भास्कर ने इसी काल में श्रृंगारलीला तिलक नामक भाण की रचना सोलह वर्ष की आयु में की थी। कालीकट के राजा विक्रमदेव के आश्रय में यह प्रथम बार अभितीत हुआ था। इस भाण में सारसिका व सत्यकेतु विट के निर्विघ्न समागम की योजना की गई है।

तदनन्तर इसी शती में भोजराज, रम्भावरणीय एवं अभिनव राघव प्रणीत हुए। इनके प्रणेता श्री सुन्दरवीर रघुद्वह एक तामिल निवासी थे। भोजराज नामक एक अंकीय रूपक के नायक भोज हैं। इनका कथानक इस तरह है– भोज के पिता अपनी मृत्यु होने से कुछ समय पूर्व आदित्य वर्मा की पुत्री लीलावती से भोज का विवाह निश्चित कर चुके हैं। परन्तु भोज के चचा के षड़यन्त्र स्वरूप उसे वन में रहना पड़ता है। वहीं उसकी लीलावती से भेट होती है। वे गान्धर्व विवाह कर लेते हैं। अन्त में मुंज के पराजय के अनन्तर भोज का अभिषेक होता है।

रम्भारावणीय यह ईहामृग है। ईहामृग का लक्षण धनंजय ने अपने दशरूपक में दिया है, जो इस प्रकार है–ईहामृग की कथा मिश्रित–प्रख्यात व काल्पित का मिश्रण होती है। इसमें चार अंक होते है तथा तीन सान्धियां अर्थात गर्भ व अवभर्श नहीं होते नर तथा देवता के नियम से इसमें नायक व प्रतिनायक की योजना होती हैं ये दोनों इतिहास प्रसिद्ध तथा धीरोद्वत होते है। यहां प्रति नायक ज्ञान की भ्रान्ति के कारण अनुचित कार्य करने वाला वर्णित होना चाहिये। यह किसी दिव्य स्त्री को जो उसे नहीं चाहती, भगाकर ले जाने वाला होना चाहिये। इस तरह कवि को चाहिये इसका कुछ–कुछ श्रृंगारभास की प्रदर्शित किया जाये। इन नायक व प्रतिनायक के विरोध को पूर्णता तक ले जाकर किसी बहाने से युद्ध को हटा दें। उसका निवारण कर दें वध के समीप होने पर भी वध कभी न करावें। ईहामृग का यह नाम इसलिये रखा गया है कि इसमें नायक मृग की तरह किसी अलभ्य नायिका को प्राप्त करने की इच्छा रखता है। [4]

रम्भावरणीय रूपक में मदन पीड़ित रावण नल कूबेर की पत्नी रम्भा को प्राप्त करना चाहता हैं। नाटक के अन्त में वह रम्भा से बलपूर्वक समागम करता है जिससे नलकूबेर उसे शाप देता है। नाटक में मायावी तत्वों का प्रयोग हुआ है व पशु पक्षी नदी आदि को मानवीय पात्रों के रूप में रखा गया है।

अभिनव राघव में राम की कथा को नाटककार ने अभिनव स्वरूप प्रदान किया हैं माया तत्वों का इसमें बाहुल्य हैं डॉ. रामजी उपाध्याय का कथन है कि ''इस नाटक के मायात्मक प्रयोगों के वैचित्रय और कौशल की दृष्टि से सुन्दरवीर को माया की उपाधि समीचीन रहेगी। [5]

इसी शती में इन्दुमती परिणय नामक नाटक की भी रचना हुई। इसके प्रणेता तंजौर के शिवाजी महाराज थे। नाटक में रघुवंशी नरेश अज इन्दुमती के स्वयंवर में भाग लेकर स्वयंवर की मत्स्ययंत्र वेध शर्त को पूरा करते हैं अतः वरमाला उन्हीं के गले में पड़ती हैं। यह नाटक यक्षगाान कोटि का है। इसमें दरू (स्वस्तिवचन) का प्रचुर प्रयोग है। इसके सभी पात्र संस्कृत भाषा का ही प्रयोग करते हैं

1842 ई. में उत्पन्न नरसिंहाचार्य राजा आनन्द– गजपतिनाथ के आश्रयदाता थे। इनके अन्य ग्रन्थों के अतिरिक्त वासवी पाराशरीय राजहंसीय एवं गजेन्द्र व्यायोग से तीन रूपक प्राप्त होते है। वासवी पाराशरीय महाभारत पर आधारित है। इस धर्मप्रचारक नाटक में श्रृंगार का अतिरेक है।

''गजेन्द्र व्यायोग'' में विष्णु नक्र से गज की रक्षा करते हैं यह नक्र एक गन्धर्व था जो शाप के कारण नक्र बना। गज भी इन्द्रघुम्न था जिसकी भी शाप के कारण यह गति हुई थी। नाटकीय नियमों के आधार पर इसमें व्यायोग के सम्पूर्ण लक्षण नहीं दृष्टिगत होते। राजहंसीय यह एक प्रकरण लक्षणी रूपक है। इसमें काकुलेश्वर के पुत्र युववर्मा और कर्णाटेश्वर की पुत्री की प्रणय कथा का चित्रण है। यहां

नायक ने विप्र वेश धारण किया है। सूत्रधार का नवकविता तथा नव युवती की साक्यता सम्बन्धी यह पद्य ध्यातव्य है–

''कविता वनितोति हि समे वनितां जरिता तु ये जुगुप्सन्ति।
कविता जरतीमभिगृध्यन्ति कथं वहपभोग हताम्।।

1860 में कौमुदी महोत्सव नामक नाटक की रचना केरल के श्री कृष्णा शास्त्री ने सोलह वर्ष की आयु में की। ''ज्योत्स्नावती'' में नरेश सोम और पुष्पकर पुरीश्वर शरदाम्भ की तनया कौमुदी के विवाह का वर्णन है। प्रकृति को नाटक में मानवीय रूप में प्रस्तुत किया जाना प्रशंसनीय है।

''स्नुषा विजय एवं वैदर्भी वासुदेव'' नामक नाटकों का प्रणयन केरल के सुन्दर राज ने किया। इस समस्यामूलक एकांकी में नाटककार ने एक ऐसी समस्या को उद्घाटित किया है, जो प्रायः कुटुम्ब में घटित होती रहती है। यहां दुष्टा सास अपनी अच्छी वधु से वैमनस्य व अपनी दुष्टा कन्या से अगाध स्नेह करती है। इस तरह पारिवारिक यथार्थ के उद्घाटन में इस नाटक की अपनी महत्ता है।

''वैदर्भी वासुदेव'' में कृष्ण और रूखमणि के प्राचीन कथानक की नवीन स्वरूप में प्रस्तुति हुई है। ''साभवत'' नाटक की सर्जना अम्बिकादत्त व्यास द्वारा की गयी है।

सावित्री चरित्, ध्रुवाभ्युदाय, गोरक्षाभ्युदय, श्रीकृष्णचन्द्राभ्युदय एवम् अमरमार्कण्डेय आदि रूपको के प्रणेता श्री शंकरलाल का प्रादुर्भाव उन्नीसवीं सदी के अन्त व बीसवीं सदी के प्रारंभ में हुआ। शंकरलाल के उपर्युक्त समस्त रूपकों का कथानक पौराणिक कथाओं के आधार पर हैं। इनके सकल रूपको में छाया तत्व पर्याप्त रूप में विद्यमान है।

आधुनिक नाटकों की इस श्रृंखला में माधव स्वातन्त्रय नामक रूपक का क्रम आता है। इसके सर्जनाकार श्री दाधीचगोपीनाथ दधिच है। उनका हिन्दी एवं संस्कृत दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। विशाखदत्त के मुद्राराक्षस से प्रभावित इस नाटक में अमात्य पद प्राप्त करने के लिये विभिन्न चालें चली गयी है।

उपहारवर्मचरित के प्रणेता श्री निवास शास्त्री ने अपने नाटक में मिथिला के राजा प्रहार वर्मा के पुत्र उपहार वर्मा के चरित का वर्णन किया है। इसी सदी में गैर्वाणी विजय रूपक की गजराज वर्मा ने सर्जना की। यह नाटक अन्य नाटकों से पृथक कथानक लिये हुए हैं इसमें नाटककार ने हौणी (अंग्रेजी) के बढ़ते हुए प्रभुत्व को देखकर भारती (सरस्वती) को चिन्तित दिखाया गया है। गर्वाणी (संस्कृत) प्राचीन काल से ही बाल्मिकी कालिदास आदि के कारण सम्मानित थी, परन्तु हौणी के कारण इसकी प्रतिष्ठा पर आंच आयी। अन्त में केरल के राजा मूलक महिपति के प्रयास से गैर्वाणी को पुनः प्रतिष्ठा मिलती है।

योरोपीय सभ्यता से प्रभावित छोटा भाई अपने बड़े भाई को हीन समझकर उनका अनादर करता है। इस भावना का अच्छा चित्रण नन्दलाल विद्याविनोद ने अपने नाटक गर्वपरिणति में किया है।

नलदमयन्ती की कथा को महामहोपाध्याय वेंकट रंगनाथ ने मंजुल नैषध एवम् महापहोपाध्याय रामावतार शर्मा ने धीर नैषध में किया है।

तत्कालीन समय में धर्म की अवस्था की और आकर्षित करने का प्रयास अप्पाशास्त्रीराशिडेकर ने अपने रूपक अधर्म विपाक में किया है। इसमें धर्म को विनाश से बचाने का प्रयास है। इस प्रतीक नाटक में कलि, अधर्म, श्रद्धा, भक्ति आदि प्रतीकात्मक पात्र हैं।

पारिजातहरण की रचना रमानाथ शिरोमणी ने की थी। इसमें पारिजात के पुष्प के लिये इन्द्र और कृष्ण के युद्ध का वर्णन है। इन्द्र और कृष्ण का यह बैर बाद में शिव के कहने पर समाप्त होता है। उपर्युक्त नाटकों के अतिरिक्त उन्नसवीं शती में और भी नाटकों का प्रणयन हुआ है। सभी का विवरण देनो संभव नहीं है। इसीलिये कुछ प्रमुख नाटकों का ही उल्लेख किया गया है।

संदर्भ

1. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य, पृ. 09
2. आधुनिक संस्कृत साहित्य की प्रवृत्तियां, श्री कलानाथ शास्त्री सं. आधुनिक संस्कृत साहित्य,डॉ. दयानन्द भार्गव
3. संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना, डॉ. हरिकृष्ण दीक्षित
4. धनंजय दशरूपक, 3–72,73
5. आधुनिक संस्कृत नाटक, पृ. 592